# भारत के षट दर्शन व उनके प्रणेता

- सोहनराज कोठारी
पूर्व न्यायाधीश

श्रमण संस्कृति से इतर ब्राह्मण संस्कृति व वैदिक धारा के स्वरूप में भारत में षटदर्शन प्रख्यात है, जिनका अध्ययन अनेक सिद्धान्त, मान्यताओं और प्रस्थापनाओं को जानने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः उन दर्शनों व उनके प्रणेताओं का संक्षिप्त परिचय इस निबन्ध में दिया जा रहा है।

## (१)न्याय दर्शन और उसके आचार्य गौतम

न्याय दर्शन का आधार ग्रंथ है न्याय सूत्र, जिसके रचयिता महर्षि अक्षपाद गौतम हैं, जिसमें तर्क विद्या या वाद विद्या को व्यवस्थित ढंग से प्रतिपादित किया गया है। महर्षि गौतम का समय ई. पू. तीसरी सदी माना जा सकता है। गौतम के पूर्व भी वाद विद्या किसी न किसी स्वरूप में विद्यमान थी व उनके बाद भी इस विद्या पर अनेक ग्रंथ व टीकाओं की संरचना हुई है। न्यायसूत्र पांच अध्यायों में विभाजित है, जिनमें प्रत्येक अध्याय में दो आहनिक (प्रति दिन के पाठ) हैं। प्रथम अध्याय के प्रथम आहनिक में न्याय के सोलह प्रतिपाद्य विषयों की सूची दी गई है यथा प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, गल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति (यल्त हेतु) और निग्रह स्थान (पराजय के स्थान) हैं। इनमे से नौ विषयों के प्रथम आहनिक में भेद और लक्षण बताए गये हैं, जिनका ज्ञान विद्या व तर्क विद्या में विशेष महत्व है। दूसरे आहनिक में सात विषयों के भेद तथा लक्षण बताए हैं जिनका सम्बन्ध वाद विवाद से है। दूसरे अध्याय के प्रथम आहनिक में संशय की परीक्षा के बाद इन चार प्रमाणों की समीक्षा की गई है यथा प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण, उपमान प्रमाण और शब्द प्रमाण। इसमें पदार्थ और काल की भी परीक्षा की गई है। दूसरे आहनिक में अन्य प्रमाणों - वर्ण, पद, पदार्थ विषयों की चर्चा है। तीसरे अध्याय में प्रथम आहनिक में ज्ञान के प्रथम चार विषय आत्मा, शरीर,



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियों और अर्थ (इन्द्रियों के विषय) का विवेचन है व दूसरे आहनिक में बुद्धि और मन की समीक्षा के साथ जीव के पुण्य पाप के कारण व विशिष्ट देह संयोग पर विचार-विमर्श किया गया है।

चौथे अध्याय के प्रथम आहनिक में प्रकृति, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) कर्म फल, दुःख और अपवर्ग (मुक्ति) की विशद परीक्षा के साथ सत्ताओं की उत्पत्ति से संबंधित आठ सिद्धान्तों की भी समीक्षा है। दूसरे आहिनक में पूर्ण पदार्थों की परीक्षा के साथ परमाणुओं की अविभाज्यता पर विचार, पदार्थो के नित्यत्व के खण्डन का पुनर्विचार और तत्वज्ञान प्राप्त करने तथा उस ज्ञान का संबर्धन करने के उपाय बताए हैं। पांचवें अध्याय के दो आहिनकों में क्रमशः जाति और निग्रह स्थान के भेद और लक्षण बताए हैं। महर्षि गौतम द्वारा प्रतिपादित न्याय सूत्र, पक्षितस्वामी वात्स्यायन के न्याय भाष्य, उद्योतकर के "न्याय वार्तिक" वाचस्पति प्रथम की तात्पर्य टीका एवं उदयन की "तात्पर्य परिशुद्धि" में विकसित हुए हैं और ये चारों ग्रंथ "न्याय चतुग्रंथिका" के नाम से जाने जाते हैं। बाद में भी न्याय सूत्र पर विस्तृत टीकाएं लिखी जाती रहीं है।

न्याय सूत्र में संपूर्ण वस्तु जगत का विश्लेषण न होकर मात्र निःश्रेयस की प्राप्ति का विवेचन है। निःश्रेयस में उच्च की प्राप्ति प्रमेय की सही ज्ञान से व निम्न की प्राप्ति प्रमाण आदि से होती है, इस दृष्टि से न्याय सूत्र मोक्षशास्त्र के साथ दूसरे शास्त्रों को समझने का साधन भी है। जिसमे आध्यात्मिक और बौद्धिक दोनों पक्षों पर समान रूप से विचार किया गया है। न्याय सूत्र के विषयों का सम्यक ज्ञान होने से मिथ्यात्व का नाश होता है, राग द्वेष, मोह से छुटकारा मिलता है, पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है, समस्त दुःखों का अन्त हो जाता है और अपवर्ग की प्राप्ति होती है। महर्षि गौतम के अनुसार ज्ञान के चार स्रोत हैं - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन्द्रिय और विषय के संयोग से उत्पन्न अभिन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है। अनुमान पूर्ववत, शेषवत और साभान्यतोदृष्ट के आधार पर किया जाता है। ज्ञात वस्तु सें अज्ञात को सिद्ध करना उपमान व आप्त पुरूष के उपदेश को शब्द प्रमाण कहते हैं। न्याय शास्त्र में बारह प्रमेय आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष प्रत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग माने गए है जिनमें प्रथम और अन्तिम प्रमेय विशेष महत्व के है। आत्मा के चिन्ह इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान हैं व इन्द्रियों (घ्राण, रसना, चक्षु, त्वचा और स्रोत) व उसके विषय गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द का आश्रयस्थल शरीर है।



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्याय के पांच अवयव प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन माने गए हैं। अक्षपाद गौतम के न्याय सूत्र ने भारतीय दर्शनों की सभी शाखाओं को प्रभावित किया है और अपने मत को सिद्ध करने में न्याय को सामान्यतः प्रयोग में सब शाखाओं ने लिया है। न्याय सूत्र देश के बाहर भी पहुंचा, ऐसा लगता है। "रबोदेआवेष्ता" (महल १३) में वाग्पटु गौतम का उल्लेख मिलता है। अरकानी लिपि में नये न्याय की हस्तलिपियां मिलती है बौद्ध न्याय के साथ यह सूत्र तिब्बत व चीन पहुंचा व अमेरिका व योरोप के विद्वानों ने भी भारतीय न्याय में रुचि ली व तर्क शास्त्र को सर्वोच्च कलाव विज्ञान में स्थान दिया।

## (२)वैदेषिक दर्शन और आचार्य कणाशे

आचार्य कणाद अनाज के धरती पर बिखरे कणों को खाकर एक तपस्वी का जीवन जीते थे। कहा जाता है कि भगवान शिव से महर्षि कणाद ने साक्षात्कार किया था और उनकी कृपा व आदेश से वैशेषिक शास्त्र की रचना की, जिसमे वेद और वैदिक साहित्य के अनेक उल्लेख मिलते हैं। वैशेषिक दर्शन कहलाने वाला कणाद का एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ सूत्रों में है, जो दश अध्यायों में है। इसलिए इसे "दशलक्षणी" भी कहते है। प्रत्येक अध्याय में दो आहिनक हैं पर ऐसा लगता है कि मूल सूत्रों में कालान्तर में बहुत परिवर्तन परिवर्द्धन किया गया है। प्रथम अध्याय में उन सभी प्रतिपाद्य विषयों के कोटियों की चर्चा है, जो पदार्थों में निहित रहते हैं (पदार्थ-कथन)। पहले आहिनक में पदाथों के जातित्व तथा सामान्य गुणों की चर्चा है तो दूसरे में सामान्य और विशेष की समीक्षा है। दूसरे अध्याय में पंचभूतों (भौतिक तत्वों) व दिशा और काल का विवेचन है। तीसरे अध्याय के पहले और दूसरे आहिनक में क्रमशः आत्मा और मन का विवेचन है। चौथे अध्याय में भौतिक शरीर और उसके सहकारियों (तत अपयोगितृ) की व शरीर की चर्चा है। पांचवें अध्याय में शारीरिक व मानसिक कर्मो का,छठे अध्याय में बैदिक धर्म, दानधर्म और आश्रम धर्म का सातवें अध्याय में गुण, समवाय, निरपेक्ष व सापेक्ष गुणों का विवेचन है। आठवें अध्याय में निर्विकल्प व सविकल्प प्रत्यक्ष प्रमाण का, नौवें अध्याय में पदाथों के अभिज्ञान एवं दशवें अध्याय में अनुमान और उसके भेदो का सविस्तार वर्णन है।

महर्षि कणाद के अनुसार भौतिक जगत की परोक्ष सत्ता ज्ञाता से निरपेक्ष व स्वतंत्र है। ज्ञाता को ज्ञान हो या न हो, वास्तविक जगत के पदाथों का अस्तित्व बना रहता है। वैशेयिकों के अनुसार पदाथों में द्रव्य तत्व वह है जिसमें गुण व कर्म होते है और जो



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम का उपादान कारण होता है। कणाद ने नौ द्रव्य तत्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन माने हैं, जिनमें प्रथम चार नित्य और अविभाज्य कणों से मिलकर बने हैं। मन अनेक, नित्य, सूक्ष्म परिणाम वाला तत्व है व आकाश, काल, दिशा और आत्मातत्व सर्वव्यापी और नित्य है जिनमें आत्मा अनेक है, पर शेष अनेक नहीं है। आत्माबंधन में भी हो सकती है और मुक्त भी। मुक्त आत्मा सुख दुःख बोध जैसे वैषेषिक गुणों से भी मुक्त होती है। द्रव्य तत्व में गुण सदा निहित रहते हैं जिनमें गुणों की संख्या सत्रह है - रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिणांम, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

कर्म गुणरहित होता है जो एक से अधिक वस्तु में निहित नहीं रहता। कर्म केवल द्रव्य के साथ ही रहता है और यह संयोग और विभाग का स्वतंत्र कारण होता है। कर्म के पांच भेद हैं - उत्प्रक्षण (ऊपर की ओर गति) अपक्षेपण (नीचे की और गति), आकुंचन, प्रसारण और गमन। समावेशन और अपवर्जन की दृष्टि से सामान्य और विशेष, व्याप्ति और व्यतिरेक नामक दो सापेक्ष कोटि हैं। आधेय और आधार के कार्य कारणात्मक नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। कणाद के ग्रंथ का नाम वैसेषिक दर्शन दिया गया है, जिसका अर्थ है, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, विशिष्ट और दूसरों से भिन्न।

महर्षि कणाद ने वस्तुओं को समझने व समझाने के लिए उनका विश्लेषण समता व विषमता के आधार परक स्पष्ट वर्गों में विभाजित किया क्योंकि उनकी मान्यता थी कि निश्रंयस और अभ्युदय की सिद्धि के लिए दृष्ट और अदृष्ट की व्याख्या व भिन्नता बताना व जानना आवश्यक है। वैशेषिकों का मानना है कि कारण द्वारा निर्माण किए जाने के पूर्व कार्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त सांख्य मत के सत्कार्यवाद के सर्वथा विपरीत है। कणाद के बहुत से सिद्धान्त गलत सिद्ध होने पर भी यह तो मानना पड़ेगा कि सत्य और धर्म का वैज्ञानिक विवेचन करने वालों में कणाद संसार के महान विचारकों की कोटि में आते है। सी. बी. रमन जैसे प्रख्यात वैज्ञानिकों ने कणाद के प्रकाश के गुण धर्म वाले सिद्धान्त की यथार्थता स्वीकार की है। कणाद के सूत्रों का भारतीय दर्शन की सभी शाखाओं ने अपने ग्रंथों में प्रयोग किया है। सत्रहवीं शताब्दी में रोह गुप्त (निन्हव) ने चैराशिक पदार्थ की स्थापना कणाद की मान्यता के अनुसार की। जैनागम नन्दीसूत्र व अनुयोग द्वार में व उपास्वाति के तत्वार्थ सूत्र व अन्य आचार्यों की रचनाओं में भी वैशेषिक दर्शन के अनेक उल्लेख एवं उद्धरण मिलते हैं। बौद्ध दर्शन में वैशेषिकों के यथार्थवाद का



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खूब खण्डन हुआ है, पर पूर्व मीमांसा ग्रंथों में उससे साम्य प्रकट होता है। वैशेषिक व न्याय दर्शन में कई बातें समान हैं। साहित्य और चिकित्सा की कृतियों पर भी वेषेशिक दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्राचीन भारत में और अब भी संस्कृत पाठशालाओं में न्याय दर्शन के साथ वैशेषिक दर्शन का अध्ययन कराया जाता है।

## (३)सांख्य दर्शन और दर्शनाचार्य कपिल

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक ज्ञान की परंपरा में भारतीय इतिहास में महत्तम नाम कपिल का है आचार्य कपिल का समय महात्मा बुद्ध से पूर्व व कम से कम कुछ उपनिषदों के लिखे जाने से पूर्व का माना जाता है। श्वेताश्वतरोउपनिषद में उनका उल्लेख इस प्रकार मिलता है -

"ऋषि प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे
ज्ञाने विभर्तिज्ञायमानंच पश्येत।"

सृष्टि के आदि काल में उत्पन्न ऋषि कपिल के सिद्धान्त को जो जानता है उसे ज्ञान कीर्ति मिलती है। भगवद गीता में सिद्ध मुनियों में कपिल को प्रथम स्थान देने को कहा है, "सिद्धानां कपिलोमुनि"। व्यास कृत योग भाष्य (१-२५) व सांख्य कारिका में कपिल को विश्रृत विद्वान व परमर्षि बताया गया है। भागवत आदि पुराण में कपिल को विष्णु के अंशावतार के रूप में दर्शाया गया है। कपिल अपने जन्म के समय ही ज्ञान, तटस्थता व क्षमता से सम्पन्न थे व संसार को अज्ञानांधकार में निमग्न पाकर उन्होने अतिशय अनुकंपा कर सांख्य दर्शन की प्रस्थापना की। सांख्य दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों को संक्षेप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है।

महर्षि कपिल की शिक्षा है कि समस्त पदार्थों का क्षेत्र वस्तुतः सातत्य का एक ऐसा दृश्य है जो अनेकतामय होने पर भी मूलतः समायोजित एकता पर आधारित है। समस्त जागतिक पदार्थों की मूल प्रकृति है जो रंगीन व नैसर्गिक सुषमामय न होकर एक प्रकार से अविकसित, अदृश्य व जगन्मूलक अव्यक्त है। सत्व, राजस और तामस - तीन गुण वस्तुतः अगणित सक्रिय तत्वों के समुदाय हैं, जो स्वयं को आंतरिक व बाहय जगत में सुख-दुःख मोह, प्रकाश प्रवृत्ति, नियमन तथा उत्साह, गति और जड़ता के रूप में प्रकट करते हैं। सृष्टि के भौतिक व मानसिक दोनों स्वरूप एक प्रकृति तत्व के ही दो भिन्न अवस्थाएं निश्चल ओर आविर्भूत, अथवा साम्यावस्था व वैषम्यावस्था में रहते हैं। कपिल



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने प्रभा अर्थात यथार्थ ज्ञान के साधनभूत तीन प्रमाण माने हैं, जिसमें दूसरे प्रमाण अनुमान द्वारा प्रकृति की सत्ता सिद्ध होती है। सब पदार्थ देश काल की परिधि के अन्दर होने के कारण सीमाबद्ध है, जिससे प्रकट है कि उनका कोई न कोई उदगम व कारण अवश्य होता है। सभी पदार्थ सुख, दुख, मोहपरक अनुभुति उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। सभी जड़ चेतन पदाथों में अविच्छिन्नं तारतम्य स्थापित है व कार्य मूलतः कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान है। इसे सत्कार्यवाद भी कहा जाता है। भगवदगीता २/१६ में इस सिद्धान्त का सारांश इस प्रकार दिया गया है -

"नासतो विद्यतेभावी, ना भावो विद्यते सतः
उभयोकिरपि दृष्टो स्तवन मोक्षत्वपरिभिः"

अर्थात असत की सत्ता नहीं होती - सत का अभाव नहीं होता। तत्वदृष्टाओं ने सत-असत का यथार्थ स्वरूप देखा है व आत्मसात किया है।

कपिल के अनुसार आत्मा या पुरूष असंख्य हैं, संसार में जितने जीव हैं, उतने ही पुरुष (आत्मा) हैं और इसीलिए किन्हीं दो पुरुषो का अनुभव समान नहीं होता व उनके जीवन-मृत्यु या सुख दुःख में समानता या एकात्मता नहीं होती। प्रकृति की यह विशिष्टता है कि वह पुरूष को सांसारिक भोगों का अनुभव कराती है और परम मुक्ति की ओर भी प्रेरित करती है। पुरुष का जीवन चरित्र उन मानसिक व शारीरिक गुणों के मिश्रित विकास से प्रारंभ होता है जिनके कारण वह शरीर धारण करता है। प्रकृति की तरह बुद्धि भी सात्विक, राजस व तामस होती है। व्यक्तिगत व समष्टिगत बुद्धि (अहंकार) में व्यक्तिगत अहंकार या विकार मन, पांच इन्द्रियों व पांच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति का कारण है व समष्टिगत विकार से पंच तन्माचारों से प्रसूत होती हैं। कपिल ने बताया शरीर धारण का अर्थ है कि पुरुष बंधन में है, जिससे त्रिविध दुखों की निष्पत्ति होती है पर जब पुरुष और प्रकृति के भेद विज्ञान को व्यक्ति समझकर अनुभूत कर लेता है, तब उसकी मुक्ति हो जाती है। इसका परम रूप "नास्ति नये, नाहम (न तो मैं हूं, न मेरा कोई है, में कुछ होता ही नहीं)" सूत्र है। कर्म गति समाप्त होते ही पुरुष स्वतंत्र व निरपेक्ष दशा को प्राप्त हो जाता है।

प्रकृति की अष्टादश विकृतियों से निर्मित लिंग या सूक्ष्म शरीर मृत्यु के समय स्थूल शरीर का त्याग कर देता है। इस सांख्य विचार को सभी भारतीय दर्शनों में मान्य



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। विज्ञान सम्मत विकास वाद भी कर्म-कारण संबंध को स्वीकार करता है। जैन और बौद्ध दर्शन के कर्ता के रूप में ईश्वर को न मानने की धारणा भी सांख्य दर्शन से ही मेल खाती है। पुरुष व प्रकृति की उद्देश्यपूर्व व प्रयत्नगत एकता के विना जगत का अनुभव व अपवर्ग की कल्पना नहीं की जा सकती एवं प्रकृति के विकास की सारी प्रक्रिया में पुरुष उसका निर्देश करता है और वास्तव में प्रकृति की प्रथम प्रसूति बुद्धि ही सारे आवागमन चक्र में पुरुषवत व्यवहार करती है, यह सिद्धान्त सांख्य जैसे प्राचीन दर्शन की एक आश्चर्यजनक उपलब्धि मानी जा सकती है। मानवीय विचारों के इतिहास में इस सैद्धान्तिक अवधारणा को पूर्व पक्ष के रूप में बहुत कम प्रकट किया गया है और बहुत ही कम इसका निर्णयात्मक उत्तरपक्षीय समाधान इतने विलक्षण व स्पष्ट रूप से चाहा या पाया गया है।

## (४)योगदर्शन व उसके प्रणेता आचार्य पतंजलि

महर्षि पतंजलि स्वयं योग दर्शन या योग शास्त्र के संस्थापक नहीं हैं, पर पुराने समय से प्रचलित योग विद्या के विविध आयामी विकास को उन्होंने नियमबद्ध सूत्रों में गुंफित कर वव्यस्थापित रूप दिया व योग शास्त्र की रचना की। अतः योगशास्त्र के पुनरुद्धारक के रूप में निःसन्देह उनका नाम इतिहास में अमर है। वे ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुए व १९५ सूत्रों में योग के सिद्धान्तों को व्यवहारिक विद्या के रूप मे प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य है मानव जीवन को विधिवत प्रयासों से उत्कृष्ट, विकसित एवं परिपूर्ण बनाना। पतंजलि द्वारा विवेचित योग, जिसे साधारणतया राजयोग कहा जाता है, मुख्यतः मनः शारीरिक है। वह मानव के मानसयंत्र को अपना कार्यक्षेत्र चुनता है और उसका लक्ष्य है कि कठोंर अभ्यास से उस पर इतना नियंत्रण स्थापित हो जाए कि वहां चित्त की वृत्तियों का कठोरता से नियमन करके आभ्यन्तर आत्मिक यथार्थता के प्रति उसे संवेदनशील बनाकर अप्रच्छन्न पुरुष अर्थात आत्मा को शुद्ध स्वरूप में देखा जा सके। चित्त को इस प्रकार संयमित किया जाता है कि वह अपनी सामान्य वृत्तियों को छोड़कर आध्यात्मिक गुणों को ग्रहण करता है, प्रकृति से अपने को मुक्त कर लेता है और अपना प्रकाश फैलाता है। पतंजलि के सूत्रों में उन्ही परिष्कृत विधियों का विवेचन है।

योग शास्त्र चार पादों में बांटा गया है। प्रथम समाधि पाद में विषय की योजना व विस्तार की व्याख्या की गई है। योग क्या है इसका उद्देश्य क्या है। इसका आरंभ और



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त कहां होता है। चित्त में संज्ञान और समाधि की स्थिति कैसी होती है। किन विधियों का विकास कर अंतिम ध्येय तक पहुंचा जा सकता है, आदि प्रश्नों का विवेचन है। द्वितीय साधना पाद में योग के प्रायोगिक पक्ष के सिद्धांतों का विवेचन है। योग की आवश्यकता, उपादेयता, प्रगति के सोपान व विधिवत प्रयोग आदि विषय इसमें समाहित हैं। तृतीय विभुति पाद में पूर्वोक्त प्रयोगों की आन्तरिक विधियों व आध्यात्मिक एवं ऐहिक सिद्धियों का वर्णन है। चतुर्थ कैवल्य पाद में मन, चित्त, तृष्णा, अहंभाव, वासना, मोक्ष का स्वरूप और जीवात्मा की उसमें स्थिति आदि का विवेचन व दार्शनिक समस्याओं पर समीक्षा है।

मानव प्रकृति के बंधन से आबद्ध होने के कारण दुखी और अतृप्त है। उसके मुक्ति का अनुभव कराना योग का मार्ग है, जिसके आठ अंग हैं। सर्वप्रथम इस हेतु मानसिक व नैतिक शुद्धि की आवश्यकता है जो पांच यम (संयम) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं पांच नियम - शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान को अंगीकार करने से होती है। यम, नियम के साथ आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, पांच बहिरंग साधनों व धारणा, ध्यान और समाधि तीन अंतरंग साधनों से आदमी अहंकार, तृष्णा, अज्ञान के बंधनों से अपने को मुक्त कर लेता है। एक वस्तु में चित्त की वृत्तियों को एकाग्र कर अबाधित ध्यान से जब मन महत्तर और गहनतर चेतना में बदल जाता है, तब मनुष्य अपनी समग्र चेतना में एकाकार हो जाता है और इस समाधि की अवस्था को कैवल्य या मोक्ष प्राप्ति की अवस्था कहा जाता है। प्रकृति के बंधन से मुक्त होने के परम उद्देश्य के साथ ईश्वर व आत्मा के खोज की अन्य विधियां मिल जाने से योग में नई नई प्रक्रियाएं व शक्तियां जुड़ गई और तांत्रिकों ने कुण्डलिनी, लयतंत्र, मंत्र इत्यादि स्वतंत्र योग विधियों को जन्म दिया व उसमें अष्टांग योग की मुख्य बातों का समावेश कर दिया। तिब्बत, चीन, जापान, आदि देशों में जब बौद्ध भिक्षु प्रचारार्थ गए, तब उन्होने इसी प्रकार की योग विद्या का अन्यत्र प्रचार किया।

योग शास्त्र का विषय व्यक्तिगत समाधि होने के कारण यह विषय समाज के लिए वैसे उपयोगी न भी हो, तब भी चित्त विश्लेषण व चेतना की गहराई तक पहुंच, जहां वासनाएं जन्म लेती हैं और जो व्यक्ति की प्रकृति को बदलने व सुधारने में बाधा उत्पन्न करती है, आदि ऐसे विषय हैं जो व्यक्ति के सुख दुःख की अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं। अतः इनके अध्ययन की सामाजिक जीवन में निसंदेह उपादेयता है। आधुनिक



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परामनोविज्ञान तथा मनः शारीरिक अनुसंधानों के निष्कर्षों का योग शास्त्र ने बहुत पहले पता लगा लिया था। मनुष्य मात्र, मन, प्राण, शरीर और इन्द्रियों ही नहीं है, पर एक जीवन्त चेतना भी है और उस चेतना में अनंत शक्ति निहित है, इस रहस्य को योग शास्त्र ने उजागर किया। चेतना के विस्तार के साथ चित्त में अन्तर्निहित शक्तियों व गुण, प्रबुद्ध एवं सजीव हो उठते हैं और तभी जीवन के विविध व्यापारों की एक के बाद एक उत्कृष्ट एवं व्यापक वीथियां खुलती हैं। अन्तर्मुखी होने पर जीवन के सारे रहस्यों का पता चलता है और इस खोज के लिए और इससे शक्ति प्राप्त करने के लिए महर्षि पतंजलि का योगशास्त्र एक बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी उदघाटक ग्रंथ है।

## (५)मीमांसा और उसके आचार्य जैमिनी

लगभग ५०० ई. पू. के आसपास आचार्य जैमिनी ने मीमांसा सूत्र की रचना की। आचार्य जैमिनी नाम से कई लेखक व ग्रंथकार हुए। अतः मीमांसा सूत्र के रचनाकार के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है। मीमांसा सूत्र में लगभग ३००० सूत्र हैं जिनमें धर्म व उससे संबंधित विषयों पर विचार किया गया है। इसमें एक हजार अधिकरण हैं, जिन्हें 'साठपादों' में बांटा गया है व सम्पूर्ण ग्रंथ में १२ अध्याय हैं, जिससे इस ग्रंथ को 'द्वादस लक्षणी' भी कहा जाता है। संपूर्ण ग्रंथ का लक्ष्य है, धर्म के बहु विधि अंगों का विवेचन करना, पर यहां धर्म का अर्थ है वेदों द्वारा अनेक सूत्रों में प्रतिपादित लोक कल्याण का साधनयुक्त यज्ञ कर्म। यज्ञ दो प्रकार के होते हैं, प्रकृति अथवा आद्य रूप और विकृति। प्रकृति वह यज्ञ है जिसमें सांगोपागं ब्राह्मणचर्या का सूक्ष्म विवेचन है, जबकि विकृति का आधार अतिदेशवाक्य होने के कारण प्रकृति की तरह कर्तव्य मानकर उन पर भी विचार किया गया है। प्रकृति की चर्चा प्रथम छः अध्यायों में होने से उसे 'उपदेश' व विकृति की चर्चा आगे के छः अध्यायों में होने से उसे 'अतिदेश' षटक कहा गया है। शेष चार अध्यायों में यज्ञ और धर्म से संबंधित अन्य कई बातों का विवेचन है। मीमांसा सूत्र में यज्ञ के विधिवत आथादन सिद्धान्त की शुद्ध मन्त्रार्थ के रूप में व्याख्या व निरूपण है व यज्ञ के विविध विहित रूपों में शुद्ध एवं सतत अनुष्ठान का विवेचन श्रौत्र सूत्र साहित्य में है।

जेमिनी ने धर्म की व्याख्या की है - ''चोदना लक्षणो र्थोधर्म'' अर्थात केवल वेद भाष्युतिकी प्रेरणा (चोदना) जिसके लिए हो और जो साथ ही (अर्थ) मानव कल्याण कारण बने वही धर्म है। इस प्रकार जेमिनी ने धर्म के लिए वेदया श्रुति की प्रेरणा को ही प्रमाण माना



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और उसे शुद्ध व स्वतः प्रमाण सिद्ध माना है। धर्म से कर्म का बोध होता है और चोदना इसे जानने का साधन है। अतः चोदना भी क्रिया को बताने वाला या निर्देश करने वाला होना चाहिए। वेद राशि के पांच भाग विधि, निषेध, अर्थवाद, मंत्र, नाम धेम में अंतिम तीन क्रियार्थ नहीं हैं, पर जैमिनी ने इनको भी क्रिया माना है। धर्म के ज्ञान के लिए स्मृति और शिष्टाचार श्रुति पर आधारित होने से परोक्ष रूप से प्रमाण हैं, पर जैमिनी ने इन पर विचार न कर मात्र प्रत्यक्ष की व्याख्या ही की है क्योंकि उनके विचार में लौकिक पदार्थों का ज्ञान, धर्म के ज्ञान की कोटि में नहीं आता। मीमांसा सूत्र में दो से छः अध्यायों में क्रमशः कर्मभेद, शेषत्व (मुख्य व पूरक के बीच संबंध) प्रयुक्त (कृत्वार्थ या पुरूषार्थ) क्रम (पूर्व पश्चात कर्म का विधान) और अधिकार (कर्ता के गुण) का विवेचन है। आगे के दो अध्यायों में अतिदेश व उसके दो भेद सामान्य व विषय पर समीक्षा की गई है। अंतिम चार अध्यायों में ऊह (रूपांतर) बाध तथा समुच्चय (अंश का लोप अथवा संयोग) तंत्र, अबाप (पूरक कर्म) प्रसंग और विकल्प पर विचार किया गया है। संघर्ष काण्ड के चार अध्यायों में मंत्र, प्रैष, निग्रह, वषटकार आदि विषयों के साथ अग्नि, इष्टका, मूप आदि का भी विवेचन है।

मीमांसा सूत्र के प्रतिपाद्य विषयों की जानकारी हेतु उसकी वास्तविक शिक्षाओं को तीन दृष्टिकोणो से देखा जा सकता है - यज्ञशास्त्र, व्याख्या शास्त्र और दर्शन शास्त्र। इसमें यज्ञ संबंधी शिक्षाओं को मुख्यतः ब्राह्मण ग्रंथों की शुद्ध व्याख्या के रूप में उसी तरह देखा जा सकता है जिस तरह उपनिषदों की शुद्ध व्याख्या वेदान्त में मिलती है और इसीलिए इन कृतियों व दर्शनों को क्रमश पूर्व मीमांसा व उत्तर मीमांसा का नाम दिया गया है। यज्ञ कर्म प्रधान (इच्छित फल की प्राप्ति) और अंगभूत (यज्ञ की उद्देश्य पूर्ति ) दो प्रकार के होते हैं। जिन्हें क्रमशः पुरूषार्थ व कृत्वार्थ कहा गया है। एक अन्य दृष्टि से कर्मों को तीन भागों में बांटा गया है - नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्य कर्म सभी के लिए आवश्यक है, नैमित्तिक खास निमित्तों पर करने का विधान है व काम्य कर्म फल की इच्छा से किये जाते हैं। नित्य कर्मों का कोई फल नहीं मिलता, पर उसका न करना सामाजिक दायित्व की उपेक्षा होने से पाप है। काम्य कर्म पूरे अनुष्ठान के साथ किया जाना चाहिए। नित्य कर्म में कर्म और फल का सुस्थिर तादात्म्य व यज्ञ कर्म की त्रुटियों के कारण कालान्तर में ज्ञान-दर्शन (वेदान्त) को अधिक महत्व मिल गया। व्याख्या के बारे में भी जैमिनी के सूत्र इतनी अधिक मात्रा में हैं कि उसका व्यापक व स्थायी महत्व होने के उपरान्त भी जनसाधारण कानूनी व्याख्याओं सी जटिलता होने से उसमें रुचि नहीं ले पाता। इतना होने पर भी यह निश्चित



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से कहा जा सकता है कि मीमांसा के कर्म सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या आधुनिक जीवन के अनुरूप की जाए व हमको सामाजिक व अन्य कर्तव्यों के प्रति जागरुक रहने व अपने कर्मो के सुफल के लिए धैर्य रखने की शिक्षा दी जाय तो आचार्य जैमिनी का मीमांसा सूत्र आज भी अपनी प्रांसगिकता बनाए रख सकता है।

## (६)वेदान्त (उत्तर मीमांसा) और उसके आचार्य बादरायण

भारत में प्रचलित समस्त दार्शनिक परम्पराओं में वेदान्त के नाना सम्प्रदायों की व्यापकता सबसे अधिक है क्योंकि वेदान्त-दर्शन का मूल उपनिषद है जो अध्यात्म विद्या के चरमोत्कर्ष ग्रंथ माने जाते हैं। कहा जाता है कि द्वापर युग में स्वयं विष्णु ने व्यास का रूप लेकर वेदों को उनेक विभागों में विभक्त किया। वर्तमान कल्प के व्यास का नाम कृष्ण द्वैपायन है जो पराशर ऋषिव सत्यवती की संतान है। वर्ण से कृष्ण और द्वीप में जन्म लेने के कारण जहां वेद व्यास का नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ा वहां बदरिका आश्रम में तपोरत रहने के कारण इनका नाम बादरायण पड़ा और ये चिरजीवी माने जाते हैं। वेद व्यास ने ऋग, यजुः, साम और अथर्व चार वेदों की प्रस्थापना की। इसके साथ महाभारत नाम का महाकाव्य, (जिसे पांचवां वेद कहा जाता है) व अष्टादश पुराणों की रचना की। पुराणों में पांच विषयों यथा सर्ग अर्थात मूल सृष्टि, २- प्रति सर्ग अर्थात परवर्ती सृष्टि, ३- वंश यानी देव पितरों की परम्परा, ४- मन्वन्तर अर्थात मनु का युग, ५- वंशानुचरित यानि सूर्य चन्द्र वंश के राजा व उनके उत्तराधिकारी का विवेचन है। उपनिषद व भगवत गीता के साथ-साथ उन्होंने वेदान्त सूत्र की भी रचना की जो क्रमशः श्रुति, स्मृति व न्याय प्रस्थान के नाम से जाने जाते हैं।

वेदान्त सूत्र में १६२ अधिकरण के ५५५ सूत्र मिलते हैं जिनमे प्रथम चार सूत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और वे सारे दर्शन का सार संक्षेप है। प्रथम सूत्र में अथातो ब्रहम जिज्ञासा (इसके बाद ब्रहम की जिज्ञासा), द्वितीय सूत्र में 'जन्माघस्य यतः' (जिसमें संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि का वर्णन), तृतीय सूत्र में शास्त्र योनित्वात (ब्रह्म शास्त्र का मूल है व शास्त्र ब्रह्म ज्ञान का कारण है) चतुर्थ सूत्र में तत्तु समन्वयात (तत्व की संगति से ब्रह्म की परम सत्य के रूप में सिद्धि) शब्दों का प्रयोग है, जो वेदान्त की समूची धारणाओं का दिग्दर्शन कराते हैं। वेदान्त सूत्र को ब्रह्मसूत्र, शारीरिक सूत्र, भिक्षुसूत्र और उत्तर मीमांसा



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र भी कहते है। इसके चार अध्याय हैं व प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त हैं और प्रत्येक पाद अधिकरणों में बंटा है। हर अधिकरण में एक या अधिक सूत्र हैं। ग्रंथ के चार अध्यायों के वर्ण्य विषय क्रमशः समन्वय अविरोध साधन और फल है।

वेदान्त सूत्र के प्रथम अध्याय में बादरायण ऋषि ने बताया कि समन्वय भाव से विचार करने पर समस्त वेद वाक्य अद्वैत ब्रह्म की सिद्धि करते है। ऋषि ने उपनिषद आदि के प्रसंगों का उल्लेख कर सिद्ध किया है कि ब्रह्म ही परम सत्य है, विश्व का सृजक व अधिष्ठाता ब्रह्म ही है। द्वितीय अध्याय में उन सभी आपत्तियों की चर्चा की गई है जो वेदान्त की उपरोक्त मान्यता के विरुद्ध है और साथ में उनका खण्डन भी किया गया है। सांख्य दर्शन का मुख्य रूप से प्रतिवाद किया गया है व अन्य दर्शनों को भी गलत प्रमाणित करने की चेष्टा तर्क के आधार पर की गई है। तृतीय अध्याय में मुक्ति के उपायों की चर्चा है। इस अध्याय में उस प्रक्रिया का भी वर्णन है जिसके द्वारा जीवात्मा पृथ्वी पर उतरती है, गर्भ में प्रविष्ट होती है, नवीन शरीर को प्राप्त करती है, जागृत, स्वप्न व सूषुप्ति में भिन्न दशाओं का अनुभव करती है, विभिन्न अवस्थाओं का संयोग वियोग पाती है और अन्त में अद्वैत ब्रह्म की अपरोक्षानुभुति होने पर आवागमन के चक्र से मुक्ति प्राप्त करती है। ब्रह्म व जीव की अभेदात्मक स्थिति का आत्मज्ञान, सन्यास आश्रम का विधान, ज्ञान साधना, सगुण-निर्गुण उपासना आदि की भी इस अध्याय में चर्चा की गई है। अन्तिम चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मज्ञान के फल व प्रसंगवश अन्य उपयोगी विषयों की चर्चा है। प्राणी की सूक्ष्म शरीर के माध्यम से जन्म जन्मांतर की यात्रा व अंत में ब्रह्मलीनता का इसमें समग्रता से वर्णन मिलता है। इस प्रकार वेदान्त सूत्र समग्र जीवन यात्रा व उसके ज्ञेय, हेय व उपादेय तत्वों की संपूर्ण चर्चा से एक अत्यंत महत्वपूर्ण व सर्वाधिक प्रभावक दर्शन ग्रंथ बन गया है।

महर्षि बादरायण के बाद वेदान्त सूत्र या वेदान्त दर्शन की उनेक ऋषि मुनियों ने व्याख्याएं व टीकाएं की हैं, जिनमें आदि शंकराचार्य का भाष्य प्राचीनतम है। आचार्य शंकर के बाद भास्कर, यादव प्रकाश, रामानुज, केशव, नीलकण्ठ, मध्व, बलदेव, वल्लम और विज्ञान भिक्षु आदि के नाम वेदान्त दर्शन की व्याख्या करने वालों में लिए जा सकते हैं। संभवतः वेदान्त सूत्र पर जितनी व्याख्याएं व टीकाएं उपलब्ध हैं वे अब भी उस पर विद्धानों द्वारा लिखा जा रहा है, उतना किसी दर्शन पर आज तक नहीं लिखा गया। भारतीय दर्शनों में वेदान्त दर्शन का जितना प्रचार प्रसार हुआ व बहुसंख्यक जनता ने इसको जितना



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनाया, उतना दूसरे दर्शनों का नहीं हो सका, इस दृष्टि से इस दर्शन व उसके आचार्य का महत्वांकन सहज में एक प्रभावोत्पादक दर्शन के रूप में किया जा सकता है। मैंने श्रमण संस्कृति से इतर दर्शन व दर्शनाचार्यों का संक्षेप में इसी दृष्टि से वर्णन किया है कि हम जैन दर्शन के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन कर शाश्वत ज्ञान की सम्यक प्रकार से अवगति प्राप्त कर सकें, अवगाहन कर सकें व सम्यक चरित्र की दिशा में आगे बढ़कर आत्मज्ञान से भाषित होकर आत्म साक्षात्कार कर सकें।



Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org